मुगल दरबार से 'राम प्रिया' की मूर्ति वापस लाने वाले श्रीपाद स्वामी रामानुजाचार्य

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने शनिवार को हैदराबाद में संत और समाज सुधारक रामानुजाचार्य की 216 फीट ऊंची स्टैच्यू ऑफ इक्वेलिटी का अनावरण किया।

भारतवर्ष पर सैकड़ों वर्षों से ही अनगिनत आक्रमण होते आए हैं परन्तु इसकी अखण्डता को अक्षुण्ण रखने हेतु अनेकों वीर, महात्मा, संत, कवि आदि ने इस भूमि पर जन्म लिया और हर प्रकार से इसकी रक्षा की। ऐसा ही एक दौर था आज से लगभग हजार वर्ष पूर्व, जब भारत की अस्मिता पर आँच आई थी। विदेशी आक्रांताओं के अत्याचार, लूट-पाट और भय से मनुष्य का मन निराशा से भर उठा था। ऐसे में दक्षिण भारत के तमिल नाडु राज्य के श्रीपेरुमबुदुर नामक ग्राम में सन् १०१७ ई० में एक ब्राह्मण परिवार में बालक का जन्म होता है। माता कांतिमती तथा पिता केशव उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते थे। वह बालक भक्ति का ऐसा बीज बोता है जिससे जनमानस में सांस्कृतिक क्रांति, चेतना और जागृति हो जाती है। छोटी उम्र में पिता को खोने के बाद बालक परिवार सहित कांची जाकर 'यादव प्रकाश' से वेदांत की शिक्षा ग्रहण करता है। अपने गुरु की वेद चर्चा और तर्क से असंतुष्ट और असहमत बालक आगे चलकर आलवर संत श्रीपाद यमुनाचार्य जी महाराज की शरण में चला जाता है और उनका प्रधान शिष्य भी बन जाता है।

समाज कल्याण के संकल्प हेतु जीवन समर्पित
संत यमुनाचार्य जी के वैकुंठ गमन के पश्चात एक अभूतपूर्व घटना घटी, जिससे एक साधारण बालक के असाधारण बनने की प्रक्रिया आरंभ हुई। बालक ने देखा की शरीर त्यागने के पश्चात भी गुरू जी की ३ उंगलियां मुड़ी हुई थी, सभी इस भेद को जानने के लिए उत्सुक थे। उदासीन बालक यह भांप गया की गुरुवर के तीन इच्छा बाकी थी। अकस्मात ही वह बोल पड़ा, "मैं ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखूंगा" और इतना कहते ही गुरु यमुनाचार्य की एक उंगली खुल गई। उसने और ऊँचे स्वर तथा दृढ़ निश्चय के साथ दो और प्रण किए की वह 'श्रीविष्णु सहस्रनाम' और 'दिव्य प्रबंधम' पर भी टीका लिख अपने गुरू की इच्छा और साथ ही समस्त मानव जाति का कल्याण करेंगे। इसके पश्चात ही बाकी दो उंगलियां भी खुल गई। कार्य अत्यंत ही दुष्कर था परन्तु दृढ़ संकल्प, विराट इच्छाशक्ति, आत्म विश्वास और गुरु के आशीर्वाद से यह कार्य पूर्ण हुआ और लक्ष्मण से श्रीपाद स्वामी रामानुजाचार्य तक का सफर भी तय हुआ।

समानता की दृष्टि

आचार्य रामानुज का कम उम्र में ही थंगाम्मा नामक युवती से विवाह संपन्न हुआ था। कुलीन कन्या होने के कारण उनके मन में तथाकथित निम्न जाति-वर्ग के लोगों के प्रति द्वेष था साथ ही वह उनसे अनुचित व्यवहार भी करती थी। भगवान वरदराज के प्रियभक्त श्री कांचीपूर्ण जी (जो निम्न वर्ग से आते थे) को आचार्य अपना गुरु मानते थे। एक दिन मध्यान भोजन हेतु उन्होंने उन्हें अपने निवास पर आमंत्रित किया। उनके भोजन करके चले जाने के पश्चात थंगाम्मा ने बचे हुए भोजन को बांट दिया, घर को गोबर से लीपा, पुनः स्नान किया और पति के लिए दुबारा भोजन पकाने लग गईं। उनके इस कृत्य से आचार्य जी को बहुत कष्ट हुआ, मन द्रवित हो उठा। उनकी दृष्टि में केवल मनुष्य ही नहीं अपितु प्रत्येक प्राणिमात्र भी ईश्वर के समतुल्य ही था। इस घटना के पश्चात ही उन्होंने गृहस्थाश्रम का त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लिया। आगे चलकर उनकी इसी सम दृष्टि से तथाकथित निम्न जाति का उद्धार हुआ, उन्हें मंदिरों में प्रवेश, समाज में सम्मान और प्रभु भक्ति के योग्य भी बनाया।

गुरु भी शिष्य बन गए

मैसूर से कुछ दूर स्थित श्रीरंगम नगरी के श्रीरंगनाथ मंदिर के मुख्य पुजारी के रूप में आचार्य जी ने कई वर्षों तक प्रभु की सेवा की। तत्कालीन समय के महान संत श्रीपाद गोष्ठिपूर्ण जी महाराज से महामंत्र सीखने के लिए आचार्य १८ बार मिलते हैं जिसमें से १७ बार निराशा ही हाथ लगती है। अठारहवीं बार की भेंट में गोष्ठिपूर्ण जी महामंत्र "ॐ नमो नारायणाय" बता देते हैं परन्तु साथ ही दो शर्त भी रखते हैं, पहला यह की मंत्र की गोपनीयता बनाए रखनी होगी और दूसरा, भविष्य में किसी सुपात्र को ही महामंत्र सिखाने का वचन। यह जानने के पश्चात की इस मंत्र के श्रवण मात्र से ही ईश्वर प्राप्ति हो जाती है, आचार्य स्वयं को रोक न सके। उनका संवेदशील हृदय आह्लादित हो उठा और इस चराचर जगत के कल्याण हेतु वे मंदिर की सबसे ऊँची दीवार पर खड़े होकर जोर-जोर से मंत्रोच्चारण करने लगे। जिसने भी इस मंत्र को धारण किया, उन सबका उद्धार हो गया। इस बात पर गोष्ठिपूर्ण अत्यंत क्रोधित होकर अपने शिष्य से कहते हैं, "गुरुद्रोही ! तुझे नरक मिलेगा।" आचार्य भाव-विभोर हो कह उठते हैं, "यदि एक मेरे नरक चले जाने से समस्त संसार का कल्याण होता है तो मुझे अपने किए पर तनिक भी खेद नहीं।" इस महान विचार, त्याग की भावना और करुणामयी हृदय के आगे गोष्ठिपूर्ण नतमस्तक हो जाते हैं, ग्लानि से भर उठते हैं और रामानुजाचार्य को अपना गुरु स्वीकार कर लेते हैं।

ध्येय के प्रति पूर्ण निष्ठा और विद्या की देवी माता सरस्वती का आशीर्वाद

"ब्रह्म सूत्र पर भाष्य लिखने" के अपने पहले संकल्प की पूर्ति हेतु आचार्य को ऋषि बोधायन द्वारा रचित "बोधायन वृत्ति" के अध्ययन की आवश्यकता थी। आज के आधुनिक दौर में तो हम एक क्लिक में ही दुनिया भर की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं परन्तु एक हजार वर्ष पूर्व ऐसी कोई सुविधा उपलब्ध नहीं थी। उस पुस्तक का पता लगाने हेतु आचार्य ने बड़ा ही संघर्ष किया और पाया कि उस कृति की केवल एक ही प्रति उपलब्ध है, वह भी सुदूर कश्मीर की घाटियों में बने 'श्री शारदापीठम' में। अपने मेधावी तथा प्रिय शिष्य कुरेज को साथ लेकर वे कश्मीर पहुंच गए और वहां उन्हें निराशा ही हाथ लगी क्योंकि पंडितों ने वह प्रति देने से मना कर दिया। मान्यता है की उस मंदिर में माता सरस्वती स्वयं प्रगट होकर पुस्तक की प्रति आचार्य को सौंप देती हैं। वे जब दक्षिण भारत के लिए प्रस्थान करते हैं तब जंगल में ही पुजारीगण उनपे हमला करके किताब छीन लेते हैं परन्तु उनके शिष्य गुरेज के पास अद्भुत स्मरणशक्ति थी जिससे वह एक नजर में ही पूरी पुस्तक याद कर लेते हैं। उन्हीं की सहायता से आचार्य "श्री भाष्यम" की रचना

करते हैं और उनकी इसी महान रचना के कारण उन्हें “श्री संप्रदाय शिरोमणि” भी कहा जाता है।

हरि को भजे, सो हरि का होय
कावेरी नदी के किनारे बसा पर्वतीय क्षेत्र मेलुकोटे बहुत ही सुंदर क्षेत्र है। अपने जीवनकाल में आचार्य ने लगभग १२ वर्ष तक इस स्थान को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और श्री चेलुव नारायण मंदिर में प्रभु की सेवा की। वीभत्स आक्रांताओं ने भारत के अनेकों मंदिर तोड़े, बहुमूल्य रत्न लूटे और साथ ही हमारे अराध्य देवी-देवताओं के विग्रह भी चुरा कर साथ ले गए। इसी में से एक सुंदर विग्रह “राम प्रिया” भी थी, जो इस मंदिर की ‘उत्सव मूर्ति’ थी और उत्सवों अथवा जात्रा के दौरान इस विग्रह की झाँकी निकलती थी। यह वही दिव्य मूर्ति थी जिसकी पूजा त्रेता युग में प्रभु राम और उनके वंशजों ने की और द्वापर में श्री कृष्ण ने भी की।

आचार्य को जब यह ज्ञात हुआ की वह मूर्ति दिल्ली के मुग़ल दरबार में है तो बिना विलंब वे अपने प्रभु को लेने पहुँच गए। उन्होंने आग्रहपूर्वक जब अपने प्रभु को ले जाने की मांग की तब मुग़ल शासक ने उन्हें मूर्ति लौटा दी। यह देखकर शहजादी अत्यंत द्रवित हो उठी और दीवानों की तरह आचार्य और उनके काफिले का पीछा करते हुए मेलुकोटे शहर जा पहुँची। मुस्लिम कन्या होने के कारण उसका मंदिर में प्रवेश वर्जित था, वह बाहर ही अपने आराध्य श्री हरि विष्णु के ध्यान में लीन हो गई। जब आचार्य को यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने उसे मंदिर में प्रवेश की अनुमति दे दी और वह महान भक्त प्रभु में ही समा गईं। तत्पश्चात आचार्य ने स्वयं ‘बीबी नाचियार’ की मूर्ति को मंदिर में स्थापित करवाया। वह मूर्ति आज भी मंदिर परिसर में स्थापित है और भक्तगण प्रभु की अनन्य प्रेमिका को भी पूजते हैं।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं की संत रामानुजाचार्य का जीवन अत्यंत ही प्रेरणादायी है। भारतीय संत परंपरा में आदिगुरु शंकराचार्य जी के पश्चात श्रीपाद रानुजाचार्य जी का ही नाम लिया जाता है। आचार्य शंकर के अद्वैतवाद से भिन्न इन्होंने ‘विशिष्टाद्वैत’ की रचना की। वैष्णव धर्म के प्रचार प्रसार हेतु इन्होंने पूरे भारतवर्ष की यात्रा की और जन जागृति का कार्य किया। अपने जीवनकाल में इन्होंने बहुत सारी रचनाएं की, भाष्य लिखे परन्तु सर्वाधिक लोकप्रिय रचनाएं ‘श्री भाष्यम’ और ‘वेदान्त संग्रहम’ को माना जाता है।

वेदान्त के अलावा सातवीं-दसवीं शताब्दी के रहस्यवादी एवं भक्तिमार्गी आलवार सन्तों के भक्ति-दर्शन तथा दक्षिण के पंचरात्र परम्परा को इन्होंने अपने विचारों का आधार बनाया। संत रामानुजाचार्यजी की शिष्य परम्परा में ही रामानन्द हुए जिनके शिष्य कबीर, रैदास और सूरदास थे। सन् ११३७ ई० में जब यतिराज रामानुजाचार्य १२० वर्ष की अवस्था में पहुँचते हैं तब वह ब्रह्मलीन हो जाते हैं। ऐसे तेजस्वी, समदर्शी दिव्यात्मा की सहस्राब्दी में सम्मान स्वरूप विश्व की दूसरी सबसे बड़ी बैठी हुई मूर्ति, “स्टैच्यू ऑफ इक्विलिटी” का अनावरण कर प्रधानमंत्री सहित समस्त भारतवर्ष ही नहीं अपितु समस्त संसार के भक्तजन उनके प्रति अपना आभार व्यक्त कर रहे हैं। यह भारतीय सांस्कृतिक क्रांति और चेतना का आगाज़ है।

(लेखिका कलकत्ता विश्वविद्यालय में शोधार्थी हैं)